अमेरिकी विदेश नीति : ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

द्वारा:- डॉ.कुमार राकेश रंजन
सहायक प्राध्यापक
राजनीति विज्ञान विभाग
एल.एन.डी.कॉलेज, मोतिहारी

1783 में अटलाण्टिक महासागर के पश्चिमी किनारे पर 13 छोटे-छोटे राज्यों का संघात्मक राज्य संयुक्त राज्य अमेरिका स्थापित हुआ। 1812 में ब्रिटेन से और 1861-65 के गृह-युद्ध से वह त्रस्त रहा। इसके अतिरिक्त उसे किसी युद्ध में सम्मिलित नहीं होना पड़ा, अत: वह पुरानी दुनिया से दूर अलगाववाद की नीति को अपनाते हुए तीव्र गति से प्रगति करता रहा।

अमेरिका के पहले राष्ट्रपति वाशिंगटन ने अपने शासनकाल में तटस्थता की नीति अपनायी। इस नीति के पक्ष में उन्होंने कहा था कि "हमें यूरोप के झगड़ों से बिल्कुल विलग होकर तटस्थता की नीति निर्धारित करनी है यही हमारी सफलता की कुन्जी है.....हमें किसी भी देश के साथ स्थायी सन्धियां अथवा समझौते में नहीं बंधना चाहिए केवल गम्भीर अवस्था में अस्थायी सन्धि की जा सकती है ।"

जेफरसन ने भी वाशिंगटन की नीति का अनुसरण किया। 1823 में राष्ट्रपति मुनरो ने यूरोपीय शक्तियों को चेतावनी देते हुए कहा था कि, "हम बता देना चाहते हें कि यूरोपीय राज्यों ने अपनी प्रणाली को अमेरिकी गोलार्द्ध में फैलाने का कोई प्रयत्न किया तो उनके इस यत्न को हमारी शान्ति एवं सुरक्षा के लिए खतरा समझा जाएगा.....यदि यूरोपीय राष्ट्रों द्वारा हस्तक्षेप किया गया तो उसे संयुक्त राज्य अमेरिका के प्रति अमित्रतापूर्ण रुख के अतिरिक्त और कुछ न समझ सकेंगे ।" इसे पार्थक्य सिद्धान्त भी कहा जाता है । 19वीं शताब्दी में अमेरिका ने 'पार्थक्य नीति' (Isolation Policy) या 'अहस्तक्षेप नीति' का पालन किया । 20वीं शताब्दी के प्रारम्भ में अमेरिका ने विश्व राजनीति में दिलचस्पी लेनी प्रारम्भ कर दी । 1901 में थियोडोर रूजवेल्ट अमेरिका के राष्ट्रपति बने। उनका मानना था कि अमेरिका विश्व की महानतम् शक्ति है अत: उसने विश्व राजनीति में अपना प्रभाव बढ़ाने का निश्चय किया। 1904-05 में जापान-रूस युद्ध को समाप्त करने में उसने दिलचस्पी ली और उस युद्ध को समाप्त करने में उसे सफलता प्राप्त हुई ।

1906 में जर्मनी और फ्रांस में मोरक्को के विषय में झगड़ा प्रारम्भ हुआ और अमेरिका ने मध्यस्थता करके दोनों देशों में समझौता कराया और विश्व-शान्ति को भंग होने से बचाया। 1914 में प्रथम विश्व-युद्ध के समय अमेरिका युद्धरत-राज्यों को युद्ध-सामग्री बेच-बेचकर काफी आर्थिक लाभ उठा रहा था पर जब जर्मन पनडुब्बियों ने अमेरिका के नि:शस्त्र तेलवाहक जहाजों को डुबाना प्रारम्भ किया तो अमेरिका में उत्तेजना फैल गयी और 6 अप्रैल, 1917 को अमेरिका ने बाकायदा जर्मनी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी । अमेरिका के युद्ध में प्रवेश करते ही युद्ध का पासा पलट गया और जर्मनी की हार होना प्रारम्भ हो गयी। अमरीकी राष्ट्रपति विल्सन ने राष्ट्र संघ के निर्माण में गहरी दिलचस्पी ली, किन्तु नवम्बर 1920 में राष्ट्रपति का चुनाव हुआ और रिपब्लिकन सदस्य वारेन हार्डिंग नए राष्ट्रपति चुने गए ।

मार्च 1921 में नए राष्ट्रपति ने घोषणा की कि अमेरिका राष्ट्रसंघ में भाग नहीं लेगा। राष्ट्रपति हार्डिंग ने पुन: अमेरिकी पृथकतावाद की नीति अपनायी। मार्च 1933 में फ्रेन्कलिन डी. रूजवेल्ट के राष्ट्रपति बनने के बाद अमेरिकी विदेश नीति स्पष्ट रूप से पृथकतावाद से शनै:-शनै: अन्तर्राष्ट्रीयतावाद की ओर उन्मुख होने लगी ।

7 दिसम्बर, 1941 को जब एकदम आकस्मिक रूप से जापान ने पर्ल हार्बर पर बम-वर्षा कर दी तो 8 दिसम्बर को जापान के विरुद्ध अमेरीकी कांग्रेस द्वारा युद्ध की घोषणा कर दी गयी और तीन दिन बाद ही अमेरिका को जर्मनी और इटली के साथ भी उलझ जाना पड़ा।

👉द्वितीय विश्वयुद्धोत्तरकालीन अमेरिकी विदेश नीति:

द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् अमेरिका ने अपने को एक नयी स्थिति में पाया। इस महायुद्ध ने जर्मनी, जापान और इटली की शक्ति को नष्ट कर दिया तथा ब्रिटेन एवं फ्रांस को इतना अधिक कमजोर बना दिया कि वे द्वितीय श्रेणी की शक्तियां मात्र रह गए ।

अमेरिका ने पाया कि युद्ध के बाद वह न केवल विश्व की महानतम् शक्ति है, अपितु साम्यवाद और सोवियत संघ विरोधी पश्चिमी दुनिया का प्रधान संरक्षक और नेता भी है। द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् अमेरिकी विदेश नीति का प्रधान लक्ष्य साम्यवादी खतरे का सामना करने और सोवियत सघ तथा साम्यवादी चीन के प्रभाव-क्षेत्र की वृद्धि को रोकने की दृढ़ व्यवस्था करना रहा है। इसके लिए उसने अलगाववाद का परित्याग कर न केवल

यूरोप के मामलों में रुचि ली वरन् सुदूरपूर्व, मध्य-पूर्व, दक्षिण-पूर्वी एशिया और अफ्रीका के मामलों में सक्रिय दिलचस्पी ली ।
शूमां के शब्दों में- "प्रथम महायुद्ध के बाद अमेरिका आसानी से अलगाववादी नीति का अनुसरण कर सकता था क्योंकि धुरी राष्ट्रों की पराजय के बाद यूरोप और एशिया में एक नया शक्ति-सन्तुलन स्थापित हो गया था, परन्तु द्वितीय महायुद्ध के बाद अमेरिका के लिए पार्थक्य नीति का अनुसरण करना सम्भव नहीं था, क्योंकि नाजी राष्ट्रों के त्रिगुट की हार के बाद यूरोप और एशियाई देशों पर साम्यवादी राष्ट्रों का प्रभाव बढ़ता जा रहा था ।"

👉अमेरिकी विदेश नीति प्रतियोगी उद्देश्यों एवं दबावों का एक दर्पण है। वह राष्ट्रीय स्वार्थ व अव्यावहारिक आदर्शवाद का विचित्र मिश्रण है। अमेरिका के लोगों की यह विशेषता है कि वे अपनी समस्या को सम्पूर्ण मानवीय समुदाय की समस्या समझ लेते हैं। अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं में अस्पष्ट होते हुए भी अमेरिका के लोग सदैव यह समझ लेते हैं कि वे सन्मार्ग पर हैं। यह प्रवृत्ति जॉर्ज वाशिंगटन से ही चली आ रही है।
अमेरिकन इण्डियन के अतिरिक्त संयुक्त राज्य अमेरिका के सभी लोग बाहर से आए हुए 'आगत जातियों' के हैं। उनकी विशाल संख्या यूरोप से आयी थी और अन्तर्राष्ट्रीय तनाव के समय वे अब भी उस पुराने महाद्वीप से घृणा और प्रेम करते हैं जिससे कि वे नाता तोड़ चुके हैं।

यूरोप न केवल उनकी सभ्यता की मातृ-भूमि है वरन् उनके अनुयायियों का लगभग आधा भाग वहीं बसता है। जब कभी यूरोप के विनाश का भय होता है तो अमेरीकी लोग चौकन्ने हो जाते हैं। जब कभी यूरोप पर संकट आता है तो अमेरिका में भी भारी राजनीतिक संघर्ष उत्पन्न हुए बिना नहीं रहता। यही कारण यह कहा जाता है कि "अमेरिकी पश्चिम की ओर मुंह करके जन्म लेते हैं।"

संयुक्त राज्य अमेरिका की विदेश नीति वहां के निवासियों के चरित्र, उनकी महत्वाकांक्षाओं व अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं के प्रति उनकी प्रतिक्रियाओं एवं वहां के राष्ट्रपति और कांग्रेस के संयुक्त प्रभाव पर आधारित है। अमेरिका की विदेश नीति किसी भी विदेश नीति की भांति वहां की जनता के ऐतिहासिक अनुभवों, भौगोलिक स्थिति, प्राकृतिक साधनों, सुरक्षात्मक तनाव, मानवीय स्रोत, जनसंख्या, वैदेशिक मामलों में कुशलता, राष्ट्रीय लक्ष्य और राष्ट्रीय हित आदि पर आधारित है।